International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(4): 65-67

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(4): 65-67
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-05-2023
Accepted: 11-06-2023

रामकृष्ण
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, अतर्रा
अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा, बांदा, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ० नमिता अग्रवाल
शोध निर्देशक, विभागाध्यक्ष संस्कृत, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा, बांदा, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
रामकृष्ण
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, अतर्रा
अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा, बांदा, उत्तर प्रदेश, भारत

वाल्मीकि रामायण में विश्वबन्धुत्व की अवधारणा

रामकृष्ण , डॉ० नमिता अग्रवाल

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम् एवं श्रेष्ठतम् भाषा है। आज भी संस्कृत वाङ्मय में नये–नये आयाम जुड़ रहे हैं, संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी नवीन परिकल्पनाओं को साकार किया जा रहा है। सत्य, अहिंसा, विश्वबन्धुत्व व विश्व संस्कृति के तत्त्व सर्वप्रथम वेदों एवं संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों में ही प्राप्त होते हैं। साहित्य समाज का दर्पण होता है, समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भाँति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। किसी भी विकसित या विकासशील राष्ट्र में राष्ट्र के लिये संस्कृति धर्म, धार्मिक विचारधारा के अतिरिक्त विश्वबन्धुत्व (भाईचारा) आदि अत्यन्त आवश्यक होते हैं। जैसा कि विश्व बन्धुत्व के विषय में कहा गया है–

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[1]

विश्वबन्धुत्व के सन्दर्भ में जब हम वाल्मीकि रामायण का अध्ययन करते हैं तो विभिन्न स्थलों पर विश्व बन्धुत्व की अवधारणा पदे पदे परिलक्षित होती है। वाल्मीकि रामायण में विश्वबन्धुत्व का चित्रण भाई का भाई के प्रति प्रेम, पिता का पुत्र के प्रति प्रेम एवं माता का पुत्र के प्रति प्रेम आदि चित्रण देखने को मिलते हैं। वर्तमान समाज अशान्ति, द्वेष से परिपूर्ण है, इसलिये आज विश्व शान्ति की आवश्यकता है, इसको ध्यान में रखते हुए विश्वबन्धुत्व परमावश्यक है, साथ ही साथ इसके अवबोधन के लिये संस्कृत साहित्य का पठन–पाठन भी आवश्यक है। वर्तमान में सहयोग की भावना लुप्त होती जा रही है इसलिये व्यक्तिगत स्वार्थ से हटकर मानव मात्र में विश्वबन्धुत्व की भावना का होना परमावश्यक है।

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' से प्रत्येक मनीषी पूर्णतया परिचित है। इस उपजीव्य काव्य में राम–रावण युद्ध में, राम की रावण पर विजय की प्रमुख घटना ही चौबीस हजार श्लोकों में श्लोकबद्ध की गयी है। उसमें एक ओर तो अपने महान निर्माता की अनुपम पाणित्य – प्रतिभा का समावेश है और दूसरी ओर जिस देश एवं जिस धरती में उसका निर्माण हुआ, जहाँ के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आदर्शमय जीवन की समग्रताओं का एक साथ समावेश है। 'रामायण' अपने मूल रूप में संस्कृत साहित्य आदि महाकाव्य और कतिपय परवर्ती महाकाव्यों, काव्यों का प्रेरणाश्रोत है, वह भारतीय परिवारों की धर्मपोथी, भारतीय आचार–विचार, संस्कार सम्बन्धों का आदर्शग्रन्थ और भारत की चिरंतन भक्ति–भावना, ज्ञान– भावना तथा मैत्री–भावना की प्रतिनिधि पुस्तक है।

राम की निरभिमानिता और उनका बडप्पन सबसे ज्यादा हमें तब दृष्टिगत होता है। जब वे राज्याभिषेक के अवसर पर राज सिंहासन को तृणवत त्यागकर चौदह वर्ष का वनवास सहर्ष स्वीकार करते हैं। क्योंकि वे पूरे विश्व को अपना कुटुम्ब समझते हैं और वन में निवास करने वाले ऋषि मुनि और जीव जन्तु आदि सभी का पालन–पोषण करना अपना कर्तव्य समझते हैं इसलिये वे इस अवसर को अपने हाथ से नहीं निकलने देना चाहते और सहर्ष वन जाकर वनेचर की तरह जीवन यापन को तैयार हो जाते है।

यज्ञ विश्व के पर्यावरण में संतुलन स्थापित करते है। तभी तो यज्ञानुष्ठानों में व्यवधान डालने वाले राक्षसों का समूल नाश करने का श्रीराम संकल्प करते है और विश्व की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहते है। जब उन्हें पता लगा कि राक्षस लोग ऋषि मुनियों के यज्ञों में मांस डालकर यज्ञ भंग कर रहे हैं तो वे उनका विनाश करने के लिये तुरन्त दौड़ पड़े।

इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान् दुष्टचारिणः।
राक्षसान् पापकर्मस्थान् यज्ञघ्नान् रुधिराशनान्।।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव।
विगृह्यं सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः।।[2]

इस प्रकार श्रीराम ने विश्व कल्याण के लिये मारीच, सुबाहु, ताडका विभिन्न निश्चरों का नाश करके विश्व मैं शान्ति की स्थापना की। इसी क्रम में विश्व में नारी को सम्मान दिलाने के लिये उन्होंने पति के द्वारा तिरस्कृत पतित कहलाने वाली पाषाण स्वरूपा अहल्या का उद्धार किया।

सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह।
त्रयाणामपि लोकानां यावद् रामस्य दर्शनम्।
शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता।।[3]

अहल्या पुनः नारी स्वरूप चेतन स्वरूप को प्राप्त करके गदगद हो उठी उसकी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी श्रीराम ने उन्हें सांत्वना दी, सम्मान दिया और माता कहकर सम्बोधित किया। इस तरह रामायण में चित्रित राम के व्यक्तित्व में नारी के प्रति सम्मान की भावना स्पष्ट दिखाई दे रही है।

आदिकवि वाल्मीकि की लेखिनी विश्व की समृद्धि के प्रति पर्याप्त रूपेण जागरूक है। 'रामायण' में आदि से अन्त तक बराबर ही विश्वबन्धुत्व के भी दर्शन होते हैं। उनकी धारणा है कि विश्व का चतुर्मुखी विकास और कल्याण तभी सम्भव है, जब वहाँ की प्रजा सर्वगुणसम्पन्न, सुशिक्षित, संयत, पराक्रमी, नीति–अनीति का विचार करने में समर्थ हो तथा राष्ट्र के नायक को भी राष्ट्र के हित के लिये सदैव प्रयत्नशील बने रहने की भी प्रेरणा दी गयी है। बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड में सम्राट दशरथ तथा सम्राट श्रीराम के राज्यकाल में प्रजाजनों की स्थिति वर्णन के माध्यम से उन्होंने समृद्धशाली विश्व के स्वरूप के विषयोन्मुख होकर अपने हृदयंगम भावों को वाणी दी है।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।।
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीला सुसंयताः।
उदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः।[4]

विश्व की प्रजा तन–मन–धन से सुसमृद्ध होनी चाहिए। उसमें सभी धर्मात्मा, सुशिक्षित, पराक्रमी, प्रसन्नचित्त, सत्यवादी, शूरवीर, सम्पत्तिमान, स्त्री पुत्र पौत्रों से युक्त, स्वच्छवेशभूषा वाले, राजा के हितैषी जागरुक, अकामी, आकायर, आस्तिक, सज्जन, अचौर, कर्तव्यनिष्ठ, वैदिक विधि विधानों को करने वाले, हृष्ट पुष्ट निर्भीक सज्जन हो तथा राजद्रोही न हो तभी विश्व उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच सकता है।

आदिकवि की यह भी भावना रही है कि राजा को अपने राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सैन्यादि की सदैव उत्तम व्यवस्था रखनी चाहिए। राष्ट्रीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार करते रहना चाहिए। प्रशासन एवं न्याय की मान्य एवं पर्याप्त व्यवस्था रखनी चाहिए, यथा–

अभितो गुणवन्तश्च न चासन् गुणवर्जिताः।
सन्धिविग्रहतत्त्वज्ञाः प्रकृत्याः सपदान्विताः।।
मन्त्रसंवरणेयुक्ताः श्लक्ष्णाः सूक्ष्मासु बुद्धिसु।
नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः।।
ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः।
उपपन्नो गुणोपेतैश्चशासद् वसुंधराम्।।
अवेक्षमाणश्चारेज्ञा प्रजा धर्मेण रक्षयन्।
प्रजानां पालनं कुर्वनधर्म परिवर्जयन्।।[5]

अर्थात् मन्त्रणा की गोपनीयता पर ध्यान देना चाहिए, सेनापति भी ऐसे ही व्यक्ति को बनाना चाहिए जो सन्तुष्ट रहने वाला, पराक्रमशाली धैर्यशाली, बुद्धिमान, श्रद्धा रखने वाला, रणविद्यापरंगत हो, राजदूत के पद भी देशानुरागी मनीषी एवं वाग्मी व्यक्ति की नियुक्ति करनी चाहिए। वन सम्पदा पशु–सम्पदा और अन्नसम्पदा सदैव विकास करते रहना चाहिए। जनता से परमोचित आयकर ही ग्रहण करना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्टय के पालन में विसंगति नहीं होने देना चाहिए। राष्ट्रीय धन का दुरुपयोग भी नहीं करना चाहिए। राजा को प्रजा के अनुरंजन में तन–मन से लीन होना चाहिए।

महर्षि वाल्मीकि राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति भी विचारशील रहे हैं। राजा दशरथ द्वारा सम्पन्न कराए गए पुत्रेष्टि यज्ञ में, राम–लक्ष्मण के जन्म में, राम–लक्ष्मण के विवाह के समय, विश्वामित्र के यज्ञानुष्ठानों में, राम–राज्याभिषेक के समय में और तो और यहाँ तक कि दशरथ के अन्त्येष्टि संस्कार के समय में भी पुराकवि वाल्मीकि ने राष्ट्रीय संस्कृति को यर्थाथ रूप में चित्रित करने में भी किसी भी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी है।[6]

'रामायण' में हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति भी लोगों को आकृष्ट किया गया है। राम और रावण के संग्राम दो देशों के संग्राम ही नहीं, बल्कि दो संस्कृतियों का संघर्ष है, जिन्हें आर्य संस्कृति और अनार्य संस्कृति कह सकते हैं। इस संघर्ष में राम एवं लक्ष्मण आर्य संस्कृति, मानव प्रजाति तथा आर्यदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, खर, दूषण, त्रिशिरा, सुवाहु, मारीच, कबन्ध, विराध, शूर्पणखा, ताटका आदि अनार्य संस्कृति, राक्षस प्रजाति तथा अनार्पदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं । सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि यद्यपि मानव प्रजाति के नहीं है। किन्तु सभी आर्यदेश के निवासी हैं और इन्हें अपने देश पर गर्व है।[7]

आर्यदेशीय वानप्रस्थ मुनियों के साथ अनार्यदेशीय राक्षसों के निर्मम प्राणघातक अत्याचारों के परिणाम को जब श्रीराम ने अपने बनवास काल में प्रत्यक्ष देखा तभी उन्होंने आर्यदेश से अनार्यों का समूलोन्मूलन करने की प्रतिज्ञा की थी। दूसरी ओर राक्षसराज रावण अपनी राक्षस एवं राक्षस संस्कृति की मान–मर्यादा को ऊँचा करने के लिये सीताहरण की योजना बनाकर मारीच से मिलता है और इस योजना में सक्रिय सहायता देने के लिये उसे स्वर्ण का मृग बनने को बाध्य करता है। रावण ने मनुष्यों की सदैव उपेक्षा की है उन्हें तृणवत मानकर उनका विनाश कराया है और विकास रोका है। वह मनुष्यों से किंचितमात्र भी नहीं डरता है केवल विभीषण को छोड़कर उसके पक्षधर अन्य राक्षसों की भी ऐसी ही धारणा है।

श्रीरामचन्द्र अंगद को रावण के पास दूत बनाकर यह कहने के लिये ही भेजते हैं कि आर्षसंस्कृति जो आर्यसंस्कृति का ही दूसरा नाम है और जिसे देव, गन्धर्व, यक्ष आदि सभी मानते हैं, का विरोध करने वाले सभी राक्षसों को सन्धि न करने पर समूल विनष्ट कर दिया जायेगा।

आदिकवि ने राम–रावण युद्ध को दो देशों के युद्ध के रूप में भी यत्र तत्र संकेतित किया है। हम देखते हैं कि समुद्र लाँघते समय हनुमान अपने लक्ष्य में विघ्न डालने वाली सुरसा को समझाते हैं कि ''सुरसे मैं श्रीराम का दूत हूँ, माता सीता की खोज के लिये जा रहा हूँ। उन्हीं के राज्य में रहते हुए तुम्हे अपने राजा श्रीराम का विरोध नहीं करना चाहिए। इस प्रसंग में भी विश्वबन्धुत्व भावना ही दृष्टिगत होती है कि राजा को प्रजा के और प्रजा को राजा के कल्याण और अपने देश की रक्षा के लिये सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए।

इस प्रकार राम–रावण के संग्राम को दो संस्कृतियों, दो सभ्यताओं और दो देशों का संग्राम बतलाया गया है, जिसमें राम की रावण पर विजय दिखाकर राम के पक्षधर भारतीयों के मन में उत्साह का संचार करके तनिष्ट विश्वबन्धुत्व भावना को ही प्रज्ज्वलित और प्रोद्दीप्त किया गया है।

सन्दर्भ

1. हितोपदेश 1/69
2. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 30/21, 22
3. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 49/16
4. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 6/8–9
5. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 7/18–21
6. अरण्यकाण्ड 6/1–25
7. अरण्यकाण्ड 36/1–24